श्रीकृष्णाय नमः
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यों नमः

कृष्णसेवामें विविध कलाओंका समर्पण, पुष्टिभक्तिसम्प्रदायके परिप्रेक्ष्यमें.

गोस्वामी शरद्, (मांण्डवी–हालोल, गुजरात)

(संक्षेप : शुद्धाद्वैतब्रहमवादीय उपक्रम – परब्रह्म कृष्ण – कृष्णसेवा ही परम कर्तव्य – समर्पण – शास्त्रविहत–निरूपित भगदाज्ञप्त भगवदीयज्ञापित समर्पणीय पदार्थ – कला तथा उसके मुख्य–गौण प्रकार – कृष्णसेवामें कलाओंका समर्पण – उपसंहार)

शुद्धाद्वैतब्रहमवादीय उपक्रम:

> ''हे सोम्य! आरम्भमें यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था. उसने इच्छा की ''मैं अनेक हो जाऊं''. उसने तेज जल और अन्न की सृष्टि की. उस इस देवताने ईक्षण किया, ''मैं इस जीवात्मरूपसे इन तीन(अग्नि–जल–अन्न) देवताओंमें अनुप्रवेश कर नाम और रूप की अभिव्यक्ति करूं''.[१]

श्रुतिके अनुसार यह समग्र सृष्टि ब्रह्मकी आत्मसृष्टि है. अतः ब्रह्मात्मिका है, असत् या मायिक नहीं. एकमेवाद्वितीय ब्रह्मने ही अपने आपको अनेक नाम–रूप–कर्मोंमें प्रकट किया है. अतः श्रुति कहती है कि यह सब ऐतदात्म्य है, सत्य है. ''**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं, तत् सत्यम्**''(छान्दो.उप.६।८।७)

सृष्टिको ब्रह्मने अपने रमणार्थ प्रकट किया है यह समझाते हुवे श्रुति कहती है कि :

> ''वह रममाण नहीं हुआ. ...उसने दूसरेकी इच्छा की. जैसे आलिङ्गित स्त्री–पुरुष होते हैं वह वैसा ही हो गया. उसने अपने आपको ही दो भागोंमें विभक्त कर दिया. उससे पति और पत्नी हुए''[२].

रमण क्योंकि वैचित्र्यके बिना सम्भव नहीं है अतः, दूसरा कोई न होनेसे, ब्रह्मने अपनेको ही अनेकविध जड–चेतन आदि अनेक उच्च–नीच भावोंमें प्रकट किया.

निष्कर्षतः श्रीगोपीनाथप्रभुचरण लिखते हैं : ब्रह्मने अपनी क्रीडाकेलिए अपने आपसे स्वात्मक जगत्को सरजा. ''**क्रीडार्थम् असृजत् पूर्वं स्वात्मना स्वात्मकं जगत्**'' (साधनदीपिका)

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि :

तत्त्वके भिन्न–भिन्न पक्षोंका निरूपण करनेके उद्देश्यसे शास्त्रोंमें परम तत्त्वका निरूपण ब्रह्म–परमात्मा–भगवान् जैसे भिन्न–भिन्न नामोंसे किया गया है. वेदान्तमें 'ब्रह्म', स्मृतियोंमें 'परमात्मा' तो भागवतमें 'भगवान्' नामसे उसी तत्त्वका निरूपण किया गया है [३]. सभी नाम–रूप–कर्मोंके रूपमें एक ही तत्त्व आविर्भूत हुवा होनेसे सर्वमूलभूत स्वरूपका निर्धारण करना कठिन हो जाता है. शास्त्रकार भी अनधिकारिओंको भ्रमित करनेकेलिए तत्त्वका निरूपण परोक्षवादसे करते हैं. इस तरह निरूपण करना भगवान्को भी अभीष्ट होता है, लीलामें रोचकता बढती होनेसे. इसी कारण [४]कोई उसे शिवतया तो कोई ब्रह्मरूपमें, कोई बुद्धके रूपमें तो कोई जगत्कर्ताके रूपमें, कोई अर्हत्के रूपमें तो कोई कर्मतया सोचता है. भगवान् कहते हैं कि मूलरूपका भजन छोडकर भगवान्के अवर रूपोंका भजन करनेवाले या तो अल्पबुद्धि

होते हैं और/अथवा उनकी बुद्धिको क्षुद्रफलोंकी कामनाने हर लिया होता है. अतः बुद्धिमानोंको मूलरूपका ही भजन करना चाहिये. भगवान्के अवर रूपोंकी उपासना करनेवालोंको नाशवन्त फल प्राप्त होता है जबकि परब्रह्मकी प्राप्तिरूप फल तो मूलरूप परब्रह्म श्रीकृष्णका भजन करनेवालेको ही होती है [५].

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण भी अतएव कहते हैं कि ''**भजनं सर्वरूपेषु फलसिद्ध्यै तथापि तु, आदिमूर्तिः कृष्णएव सेव्यः सायुज्यकाम्यया**'' (तत्त्वार्थदीपनिबन्ध १।१३) फलकी प्राप्ति तो भगवानद्वारा धारण किये गये किसी भी रूपका विहित रीतिसे भजन करने पर हो सकती है परन्तु जिनको परब्रह्मके साथ सायुज्यकी कामना हो उनकेलिए तो आदिमूर्ति श्रीकृष्ण ही सेव्य हैं.

मूलरूपका निर्धारण कैसे हो? शास्त्रोंमें सर्वमूलभूत तत्त्वको इस तरह परिभाषित किया गया है : जो सबके आदिमें होता है/जिससे सब प्रकट होता है, जो सृष्टिकालमें है/जिसके सहारे सब जीते हैं, और जो सबके अन्तमें बचता है/जिसमें सब लीन होता है वही 'मूलतत्त्व-ब्रह्म' कहलाता है [६].

तदनुसार सर्ववेदोपनिषदोंका सार बतलाते हुवे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि ''इस समग्र जगत् का पिता धाता माता पितामह गति भर्ता प्रभु साक्षी निवास आश्रय सुहृद् उत्पत्ति प्रलय स्थान निधान तथा अविनाशी बीज भी मैं ही हूं''[७]

अतएव सबके उत्पत्तिस्थितिलयके आधारतया परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ही सिद्ध होत हैं.

कृष्णसेवा ही परम कर्तव्य:

''यो यदंशः स तं भजेत्'' जो जिसका अंश होता है वह अपने अंशीको भजता है. जीव परब्रह्म परमात्माका सनातन अंश है. अतः अपने अंशीका भजन जीवको अवश्यकर्तव्यतया प्राप्त होता है. वस्तुतः तो उसका अस्तित्व भी तभी सार्थक-सफल माना जाता है. वैसे तो भगवान्के प्रति अपने भावोंको अभिव्यक्त करनेके के कर्म-ज्ञान आदि अनेक साधन शास्त्रवर्णित हैं. तथापि भगवान् तो तप ज्ञान कर्म आदि योगोंसे उनकी उपासना करनेवालोंकी तुलनामें जो श्रद्धापूर्वक उनका भजन-सेवा करता है उसे ही युक्ततम मानते हैं [८]. अतः भगवान् अर्जुनको आदेश देते हैं : ''तू मेरा भक्त बन'' ''**मद्भक्तो (भव)**'' (भग.गीता १८।६५).

वसुदेव-देवकीको भी भगवानने प्रकट होकर उनमें माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह रखनेको कहा : ''आप दोनों मेरा पुत्रभावसे और ब्रह्मभावसे स्नेहपूर्वक चिन्तन करते हुवे मेरी परा गतिको प्राप्त होंगे''[९].

महर्षि दुर्वासाके प्रति भगावन् आज्ञा करते हैं:

> ''अस्वतन्त्रकी तरह मैं मेरे भक्तोंके अधीन हूं. मेरे हृदयको मेरे साधु भक्तोंने ग्रसित कर रखा है. मेरे भक्त मुझको प्रिय हैं और मैं उनको. जिनकी एकमेव गति मैं हूं ऐसे मेरे साधु भक्तों को छोडकर न मैं अपनेको चाहता हूं न लक्ष्मीको ही. जो भक्त स्त्री घर पुत्र स्वजन प्राण धन ऐहिक पारलौकिक सबको छोडकर मेरी शरणमें आ गये हैं उनको मैं कैसे छोड सकता हूं? जिस प्रकार सती स्त्री अपने सत्पतिको अपने वशमें कर लेती है उसी तरह मेरेमें अपने हृदयको बांध देनेवाले मेरे समदर्शी भक्तोंने मुझे वशमें कर रखा है. मेरे भक्त मेरी सेवामें ही तृप्तिका अनुभव करते हैं.

वे मेरी सेवाके बदलेमें सालोक्यादि फलोंको भी नहीं चाहते, अन्य तुच्छ फलोंका क्या कहना? ऐसे मेरे साधु भक्त मेरा हृदय हैं, और मैं उनका हृदय हूं. मेरे अतिरिक्त वे कुछ भी नहीं जानते हैं, मैं उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानता हूं''[१०].

अतएव महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण पुष्टिभक्तिमार्गका अन्तरङ्ग कर्तव्य समझाते हुवे आज्ञा करते हैं : [११] ''सर्वदा सर्वभावोंसे व्रजाधिप श्रीकृष्ण ही भजनीय हैं. हमारा यही एकमेव धर्म है, अन्य कोई भी धर्म कभी भी और कहीं भी नहीं है''(चतुःश्लोकी १).

समर्पण :

यह सृष्टि ब्रह्मकी आत्मक्रिडा होनेसे, और ब्रह्मेतर कुछ भी नहीं होनेसे तत्त्वदृष्ट्या तो यहां सब कुछ ब्रह्ममें ही समर्पित होता है. अतः उपनिषत्में कहा है :

''यह आत्मा सर्व भूतोंका अधिपति है, सभी भूतोंका राजा है. जैसे रथकी नाभीमें और रथकी नेमीमें सारे अरे समर्पित रहते हैं उसी तरह सभी प्राणी, देव, लोक, प्राण सब कुछ इस परम आत्मामें समर्पित हैं''[१२].

ऐसा समर्पण ज्ञानमार्गीको तो आनन्ददायक होता होगा, परन्तु, भक्तको तो ऐसे समर्पणमें लेशमात्र भी कृतार्थताका अनुभव हो नहीं सकता है, न ऐसा समर्पण अध्यस्त संसारी जीवको भगवदभिमुख बनानेमें उपकारक होता है, और न ही भगवत्सन्तोषजनक होता है. अतः बलिको भगवत्प्रदत्त इन्द्रपद बलिसे छीन लेने पर भक्तराज प्रह्लादजीने कहा कि ''आत्माको मोहित करनेवाली राज्यलक्ष्मीको बलिसे लेकर आपने उसपर कृपा ही की है. आपका प्रदान जैसे सुन्दर है, वैसे वापस लेलेना भी सुन्दर है''. तात्पर्य यह है कि जो प्रभुकेलिये सृष्ट है उसके ऊपरसे स्वत्वाभिमतिको त्यागकर उसका प्रभुको समर्पण करना, प्रभुके कार्यमें विनियोग करना ही हम सबका कर्तव्य है.

अतएव बलिराजाकी पत्नी विन्ध्यावली भगवान्को निवेदन करती हैं :

''हे प्रभु! आपने अपनी क्रीडा केलिए ही इस त्रिजगत्की सृष्टि की है. परन्तु कुबुद्धिवाले स्वयंको इसका स्वामी मान लेते हैं. आप ही इस जगत्के कर्ता और भोक्ता-स्वामी हैं. ऐसेमें स्वयंको कर्ता मान बैठे निर्लज्ज लोग आपको क्या अर्पण करेंगे?''[१३]

अतएव सर्वस्वका समर्पण करनेका उपदेश देते हुवे भगवान् आज्ञा करते हैं :

''तू जो करता है, जो खाता है, जो दान करता है, जो तप करता है वह सब मुझको अर्पण कर दे''[१४].

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंको भी श्रावण शुक्ल एकादशीकी मध्यरात्रिमें साक्षात् प्रकट हो कर भगवानने सिद्धान्तरहस्यके रूपमें समर्पणोपदेश दिया था :

''आत्मनिवेदी भक्तको अपने लौकिक-वैदिक सभी कार्य श्रीकृष्णको समर्पण करनेके पश्चात् ही करने चाहिये ऐसी पुष्टिभक्तिमार्गकी निर्दुष्ट मर्यादा है. भक्तका कोई भी भोग अथवा व्यवहार असमर्पित न रहे तदर्थ सर्व कार्योंके आरम्भमें सर्व वस्तुओंका समर्पण प्रभुको करना चाहिये''[१५].

शास्त्रमें निवेदन, दान और अर्पण/समर्पण/विनियोग पृथक्-पृथक् समजाये गये हैं :

''ये ये वस्तु-व्यक्ति-कार्य आपको निवेदित करता हूं'' इस तरह स्वामीको निवेद्य वस्तुका ज्ञापन करना 'निवेदन' कहलाता है. निवेदन पत्नी घर पुत्र आप्त धन ऐहिक पारलौकिक आत्मा सहित देहेन्द्रिय-प्राणान्तःकरण सर्वस्वका किया जाता है. इनमेंसे जब जो स्वामिभोग्य हो उसका स्वामीको ज्ञापन करना 'अर्पण' कहलाता है.[१६]

वैसे तो जिस भक्तके पास जो सहज सुलभ हो उसका समर्पण वह भगवान्को कर सकता है. और यदि समर्पण प्रेम पूर्वक किया गया हो तो भगवान् भी बडी प्रसन्नतासे उसका उपभोग करते ही हैं.

''पत्र पुष्प फल जल जो कुछ भी जो मुझे भक्तिसे प्रदान करता है उस प्रयतात्माके द्वारा भक्तिसे अर्पित किये पत्र-पुष्पादिका मैं उपभोग करता हूं''[१७].

तथापि समर्पणमें स्वच्छन्दता न आ जाये तदर्थ स्वाभिलषित समर्पणकी प्रणालीका ज्ञान कराते हुवे कुछ दिशानिर्देश स्वयं भगवानने किये हैं. तदतिरिक्त भगवच्छास्त्रोंमें तथा आप्तजनों द्वारा भी एतद्विषयक निर्देश प्राप्त होते हैं.

शास्त्रविहत-निरूपित भगदाज्ञप्त भगवदीयज्ञापित समर्पणीय पदार्थ :

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि

[१८]''भगवत्सेवा प्रमाणमूलिका (सेवा स्वयं ही फलरूपा है ऐसा जानकर केवल भगवदर्थ) होने पर ही पुरुषार्थपर्यवसायिनी होती है. अन्यथा मनमें कुछ अन्य(दम्भ-काम-लोभ-ईर्ष्या-स्पर्धा आदि) भावों-प्रयोजनोंको रखकर अन्यथा(भक्ति विरुद्ध भावोंसे भगवत्सेवा) करने पर फलकी सिद्धि नहीं होती है. अतः (वर्तमानमें भगवन्मार्गका प्रवर्तन भगवानने श्रीभागवतद्वारा किया होनेसे) श्रीभागवतके तत्त्वका ज्ञान गुरुको होना आवश्यक है''. (तत्त्वदीपनिबन्ध सर्वनिर्णयप्रकरण २२७).

भगवान्की रुचि-प्रसन्नता किसमें है उसका ज्ञान साधारण भक्तोंको होना सम्भव नहीं है. अतः इसका ज्ञान तो भागवतादि भगवच्छास्त्रों द्वारा, स्वयं भगवान्के जताने पर, अथवा भगवदीयों द्वारा ही प्राप्त हो सकता है. पुष्टिभक्ति सम्प्रदायमें भी समर्पणीय पदार्थोंका निर्धारण इसी रीतिसे किया जाता है.

वैसे तो भगवत्सेवामें समर्पणीय पदार्थोंकी गणना करना सम्भव नहीं है, तथापि, भागवतमें वर्णित समर्पणीय पदार्थों पर पुरःस्फूर्तिक दृष्टि करें तो :

अङ्गराग :

''ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना,
सम्प्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ'' (भाग.पुरा.१०।४२।५)

वस्त्र-आभूषणादि :

''श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्,
महार्हवैडूर्यकिरीट-कुण्डल-त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्,
उद्दामकाञ्च्यङ्गद-कङ्कणादिभिः विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत'' (भाग.पुरा.१०।३।९-१०)

केशके शृंगार:

''तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह-वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहास''(भाग.पुरा.१०।१२।४२)

पुष्पके शृंगार:

''बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासं कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्''
(तत्रैव १०।१८।५)

''श्यामं हिरण्यपरिधिं नवमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे'' (तत्रैव १०।२०।२२)

गृहसुशोभन :

''सम्मार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः''(भाग.पुरा.११।११।३९)

उत्सवोपचार :

''सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः, गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः,
व्रजः सम्मृष्ट-संसिक्त-द्वाराजिरगृहान्तरः, चित्रध्वजपताकास्त्रक्-चैलपल्लवतोरणैः,
गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः, विचित्रधातुबर्हस्रग्-वस्त्रकाञ्चनमालिनः,
महार्ह-वस्त्राभरण-कञ्चुकोष्णीषभूषिताः'' (भाग.पुरा.१०।५।५-८)

''हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः, अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे,
...गोपः परस्परं हृष्टा दधि-क्षीर-घृताम्बुभिः, आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः''
(भाग.पुरा. १०।५०।१२-१४)

''उपगीयमानविजयः सूत-मागध-वन्दिभिः, शङ्ख-दुन्दुभयो नेदुः भेरी-तूर्याण्यनेकशः,
वीणा-वेणु-मृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ, सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिर् अलङ्कृताम्,
निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्ध-तोरणम्, निचीयमानो नारीभिः माल्य-दध्यक्षताङ्कुरैः''
(भाग.पुरा.१०।५०।३७-३९)

खिलौने :

''चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ'' (भाग.पुरा.१०।११।३८)

सुबोधिनी :''भ्रमर-चक्र-सूक्ष्मदण्ड-काष्ठखण्ड-कृत्रिमरथ-वादित्राकर्षणादीनि क्रीडापरिच्छदानि''.

वितान-आसन-शैया :

''महार्होपस्करैर् आढ्यं कामोपायोपबृंहितम्, मुक्तादामपताकाभिः वितान-शयनासनैः,
धूपैः सुरभिभिर् दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम्'' (भाग.पुरा.१०।४८।२)

भोज्यपदार्थ :

''पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः, संयावापूप-शष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम्''
(भाग.पुरा.१०।२४।२६)

नृत्य :

''पादन्यासैर् भुजविधुतिभिः सस्मितैर् भ्रूविलासैः भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर् गण्डलोलैः,
स्विद्यन् मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः''
(भाग.पुरा.१०।३३।८)

वादन-गान :

''उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः, कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम्,

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः, उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति,
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात्''(भाग.पुरा.१०।३३।९-१०)

वास्तुकला :

''दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम्, रथ्याचत्वर-वीथीभिर् यथावास्तु विनिर्मितम्,
सुरद्रुमलतोद्यान-विचित्रोपवनान्वितम्, हेमशृङ्गैर् दिविस्पृग्भिः स्फटिकाट्टालगोपुरैः,
राजतारकुटैः कोष्टैर् हेमकुम्भैरलङ्कृतैः, रत्नकूटैर् गृहेर् हेमैर् महामरकतस्थलैः,
वास्तोष्पतीनां च गृहैः वलभीभिश्च निमितम्''(भाग.पुरा.१०।५०।५१-५४)

इसी तरह स्वयं भगवान् द्वारा तथा भगवदीयों द्वारा भी समर्पणीय पदार्थोंके विषयमें ज्ञापित करनेके प्रसङ्ग भी सर्वत्र प्रसिद्ध हैं. यथा,

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंसे प्रभुने गाय मांगी. आपके ही कनिष्ठ पुत्र श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणोंके प्राकट्यदिवस पर प्रभुने जलेबी अरोगनेकी इच्छा प्रकट की. निष्कञ्चन भगवदीय श्रीपद्मनाभदासजी द्वारा समर्पित छोलाको अरोगनेमें ही परम सन्तोष प्रकट किया. भगवदीय श्रीत्रिपुरदास कायस्थ, आकस्मिक धनसंकट उपस्थित हो जानेके कारण एक वर्ष शीतकालोचित उत्तम वस्त्र भेज न पाये अतः साधारण वस्त्र भेजा जिसे भंडारीने प्रभुको अंगीकार कराने लायक न मानकर रख रखा. भक्तवत्सल प्रभुकी ठंड, परन्तु, तब तक दूर न हुई जब तक त्रिपुरदासके वस्त्रसे सिला गद्दल अङ्गीकार कराया न गया. वैष्णव गङ्गाबाई क्षत्राणीकी दृष्टि पधारायी जाती भोग-समग्री पर पड जानेसे प्रभुने उसे न अरोगा. प्रभुने रामदास भीतरीयाके द्वारा इसकी सूचना श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणोंको दी.(सभी ८४ वैष्णववार्ता)

भगवदीयोंके चरित्रोंमें ऐसे अनेकानेक प्रसङ्ग वर्णित हैं.

स्व-स्वकीयका ही समर्पण:

सभी तरहके यज्ञ-तीर्थाटन-दान-अर्चनादि धर्मकार्य तभी सफल हुवे माने जाते हैं जब उनको स्ववर्णाश्रमविहित शास्त्रानुमोदित वृत्तिसे उपार्जित धनद्वारा सम्पन्न किये जायें. अर्थात् धनादि पदार्थ स्वकीय ही होने चाहिये, परकीय नहीं. अतः समर्पणीय पदार्थ भी समर्पणकर्ता द्वारा पूर्वोक्तरीत्या स्वोपार्जित और स्वकीय ही होने चाहिये, परकीय पदार्थोंका समर्पण कदापि किया नहीं जा सकता है. समर्पणीय पदार्थ पर अन्यका लेशमात्र भी स्वत्व होने पर भगवान् उसका स्वीकार नहीं करते हैं.

समर्पणमें प्रतिनिधित्व नहीं:

भक्तिका मुख्यार्थ प्रेम-सेवा होता है. यज्ञादि कर्मोंकी तरह प्रेममें प्रतिनिधित्वका स्वीकार भगवान् नहीं करते हैं. अतः भक्तिमार्गी प्रभुके श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्चन आदि जो भी करना चाहता हो उनको यदि वो स्वयं करता है तब ही प्रभु उसका स्वीकार करते हैं. इनको अन्यद्वारा करवाने पर भगवान् उसे भक्ति नहीं पर थोथा कर्मकांड समझते हैं.

समर्पण भगवदर्थ ही, अन्यार्थ नहीं:

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरचण आज्ञा करते हैं : ''भक्तिनिष्ठा तब कही जाती है जब श्रीकृष्ण प्रसन्न हों''. 'भक्तिसे ही भगवान् सन्तुष्ट होते हैं, ओर किसीसे नहीं'' अतः भगवत्सेवा यदि भगवदर्थ नही की जाती है तो भगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं. अतः सेवा-समर्पण केवल भगवान्को रिझानेकेलिये ही किये जाने चाहिये, लोकरञ्जनार्थ या स्पर्धा-प्रतिष्ठा-आजीविकार्थ नहीं.

उत्तमका समर्पण:

''लोकमें जो-जो इष्टतम हो (दुग्ध-आम्रादिक), जो भगवान्को भी अतिप्रिय हो(नवनीतादि) उनका (स्वसामर्थ्यानुसार) निवेदन मुझको करे.''[१९]

समर्पणमें प्रेमकी महत्ता, प्रमाणकी नहीं:

प्रेमसे समर्पित अल्प वस्तु भी मुझको बहुत हो जाती है और अभक्त द्वारा समर्पित बहुत वस्तु भी मुझे सन्तोषप्रद नहीं होती. [२०]

अभुक्तका ही समर्पण:

हे अम्बरीष! वैष्णवोंको नवीन वस्त्र फल अन्न रस आदि का सदा सर्वप्रथम विष्णुको भोग लगाना चाहिये. तदनन्तर ही उनका सेवन करना चाहिये[२१].

देवतान्तरका यजन भी भगवन्महाप्रसादसे ही:

''देव-पितृ सम्बन्धि कार्य भी विष्णुको निवेदित अन्नादिसे करने पर अनन्त फल देनेवाले होते हैं''.[२२]

असमर्पितका उपभोग वर्जित:

''हे अम्बरीष! श्रीहरिको निवेदित किये विना जो घरमें पकाया हुवा अभीष्ट खाता है वह सात जन्मों तक नरकमें जाता है'' [२३].

सेवाकार्यका ढोल न पीटे:

''दम्भ-अभिमानादिसे रहित होकर निष्कपटभावसे दासकी तरह मेरे स्थानकी सेवा करे. और जो भी सेवा करे उसका ढोल न पीटें ''[२४].

अक्लिष्टका समर्पण :

''भगवत्सेवामें क्लिष्ट पदार्थोंका समर्पण नहीं करना चाहिये. क्लिष्ट पदार्थ तीन तरहके होते हैं : १.लोकक्लिष्ट : लोकमें जो पदार्थ क्लेशसे प्राप्त होते हों उनका समर्पण प्रभुको करना उचित नहीं है. २.आत्मक्लिष्ट : जो पदार्थ स्वयं प्रभुको क्लेश करानेवाला हो उसका भी समर्पण नहीं करना चाहिये. ३.चित्तक्लिष्ट : जिसका समर्पण करनेसे सेवाकर्ताके चित्तमें क्लेश होता हो''. ऐसे क्लिष्ट पदार्थोंका समर्पण करने पर प्रभु उसका स्वीकार नहीं करते हैं. (तत्त्वदीपनिबन्ध सर्वनिर्णय प्रकरण) अतः लोकमें जो इष्टतम हो यथा आम्र-द्राक्षादि, प्रभुको जो प्रिय हैं यथा दुग्धादि, जो सन्मार्गसे उपार्जित हों, जिसके ऊपर किसी अन्यका हक्क-हिस्सा न हो अर्थात् जो वस्तु समर्पणकर्ताकी स्वयंकी ही हो, और जो चिरकालमनोरथसे चिन्तित हो उसका समर्पण प्रभुको करना चाहिये''[२५].

समर्पणमें वर्ज्य शाक-पुष्पादि पदार्थ:

वृन्तांक(चतुर्मासमें वर्ज्य), कलिङ्ग–तरबूज, जलाहुवा अन्न, मूली, लशुन, पलाण्डु–प्याज, गृञ्जन, पिण्याक–तिलखली, मसूरदाल आदि पदार्थ जो द्विजों तथा वैष्णवों को वर्ज्य हैं उनका श्रीहरिको अर्पण भी सर्वथा वर्ज्य समझना चाहिये[२६].

इसी तरह पुष्प, वस्त्र आदिके सम्बन्धमें भी समझ लेना चाहिये. इसका विशेष ज्ञान पुराण, धर्मशास्त्र, वैष्णवतन्त्र तथा स्वसम्प्रदायानुसारी शिष्टाचार से प्राप्त करना चाहिये.

''जमीनपर गिरे हुवे, स्मशानमें उगनेवाले, अधोवस्त्रमें रखे हुवे, वाम हस्तसे लाये हुवे, आक–एरण्डके पत्रमें लाये हुवे, कांटेवाले, जन्तुदूषित, सूंघेहुवे, गन्धरहित, तीव्रगन्धवाले फूल त्याज्य होते हैं. इसी तरह शिरीष, शाल्मली, कुटज–इन्द्रयव, गिरिकर्णिका, आक के फूल भी विष्णुपूजनमें त्याज्य होते हैं''.

(पद्मपुराण, गरुडपुराण, विष्णुधर्मोत्तर)

जैसे कि नारद पञ्चरात्रमें कहा गया है, ''प्रभुके माहात्म्यके ज्ञान पूर्वक प्रभुमें सुदृढ सर्वतो अधिक स्नेह 'भक्ति' कहलाती है''. भक्तिसूत्र भी कहते हैं ''सा परानुरक्ति ईश्वरे''. ईश्वरके प्रति परा अनुरक्ति 'भक्ति' है. स्नेहका यह स्वभाव होता है कि वह मर्यादाओंको सहन नहीं कर पाता है. स्नेही भक्त अपने भजनीयकेलिये कितना भी करले तब भी सन्तुष्ट नहीं हो सकता है. अधिकसे अधिक करना चाहता है. स्नेहके अमर्याद होने पर भगवत्सेवामें कभी अत्याग्रह, परपीडा, अनधिकारचेष्टा आदि दोष भी हो सकते हैं. ऐसेमें राग–भोग–शृंगार अथवा विविध कलाओंका समर्पण प्रभुकार्यमें करते समय उपर्युक्त (सदाचार–देव–सेव्यस्वरूप–सम्प्रदाय–भाव–स्वसामर्थ्य आदि) मर्यादाओंका पालन किया जाना चाहिये.

कला तथा उसके मुख्य–गौण प्रकार

कलाकी सर्वमान्य परिभाषा दे पाना कठिन है. देश–काल–जनरुचि–धर्म–परम्परा–वातावरण आदिके अनुसार उसके नाम–रूप परिवर्तित होते रहते हैं. इनमें कभी परस्पर विरोध भी देखा जाता है. जैसे एब्स्ट्रेक्ट और फिगरेटिव् आर्ट. रूढिसे ही इनका ज्ञान होता है, स्वीकार्य हो चाहे न हो. कला, सामान्यत्या, एक कुशलतापूर्ण अभिव्यक्ति होती है, रसोद्बोधक होती है. यथा, जो कहना हो उसे कैसे भी न कहकर आलङ्कारिक भाषामें कहना. सपाट स्वरमें न कहकर स्वरोंके भेदसे गाकर कहना. भोज्य पदार्थोंको पशुकी तरह गिरा–पडा–कच्चा न खाकर सेक–तल–गलाकर, मसाले मिलाकर, सजाकर खाना.

नूतनताकी चाह मनुष्यको एक स्थान पर टिकने नहीं देती है. अतएव जिसपर वह टिकता है, कुछ क्षणोंमें ही उसके प्रकारभेद सोचने–चाहने लगता है. वस्तुतः तो अपनी एकाकीतामें रमण सम्भव न हो पानेसे ब्रह्मने ''**एको अहं बहु स्याम्**'' (छान्दो.उप.) ऐसी बहुभवनेच्छा सृष्टिके आरम्भमें की. यह बहुभवनेच्छा ही सृष्टिमें प्रकट हुई–होती सभी विविधताका मूल है. कलाओंके भी जो मुख्य–गौण प्रकार प्रकट हुवे हैं उनके पीछे भी यही कारण है.

वैसे तो कलाके नामपर नृत्य–गायन–वादन–चित्रण आदिको प्रमुख कलाओंमें गिना गया है. वृक्ष–शाखाओंकी तरह इन प्रमुख कलाओंके अवान्तर भेद प्रचलित हैं. यथा, ताण्डव–लास्य भरतनाट्यम् कथक मणिपुरी, सामगान हिन्दुस्तानी कर्णाटकी, वाद्योंके भेदसे तथा उनके भी घरानाओंके उपभेद आदि.

यद्यपि इस आलेखका प्रमुख प्रतिपाद्य इनका अधिक विवेचन करना नहीं है, यह निरूपण तो आलेखका शीर्षक अव्याख्यात रह न जाय तदर्थ प्रसङ्गवश किया है. अतः मूल विषयकी ओर जायें.

लोकमें कलाएं श्रेष्ठताका मानक होती हैं. अतः भक्त जब समर्पण करता है तब जिस कलामें वह सिद्ध हो उसका भी समर्पण वह अपने प्रभुको रिझानेमें किये बिना रह नहीं पाता है. इसी तरह, जिसका समर्पण वह करता है उसे भी यथासम्भव कलात्मक रीतिसे करनेका प्रयत्न करता है.

द्विविध समर्पण साक्षात्-परम्परया : भगवत्सेवामें समर्पण साक्षात् और परम्परा यों दो रीतिसे किया जाता है. गीत, वाद्य, नृत्य, चित्र, पाक, वस्त्र, शृंगार, पुष्प आदिका समर्पण साक्षात् सम्भव होता है अतः उनका आग्रह पूर्वक साक्षात् ही समर्पण किया जाता है. इसी कारण इनसे सम्बद्ध कलाओंका विस्तार भी अत्यधिक हुवा है. जिनका समर्पण, परन्तु, साक्षात् सम्भव नहीं होता है उनका समर्पण परम्परया होता है.

वैसे तो कलाओंको किसी निश्चित संख्यामें बांधना सम्भव नहीं है. अतः आचार्यचरण श्रीभागवत सुबोधिनीमें लिखते हैं :

''एकस्यां कलायां बहवः प्रकारा बहवो ग्रन्थाः शिक्षा च महती''

''एक-एक कलाके अनेक प्रकार होते हैं, अनेक ग्रन्थ होते हैं और उनकी महती शिक्षा है''. तथापि प्राचीन कालमें ब्रह्मचारिओंको चौसठ कलाएं सिखायीं जातीं थीं यह प्रसिद्ध है. भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम ने गुरु सान्दीपनिके वहां चौंसठ कलाएं सीखीं थीं ऐसा निरूपण श्रीभागवमें प्राप्त होता है: ''**अहोरात्रैः चतुःषष्ट्या संयतौ तावतीः कलाः**'' (भाग.पुरा.१०।४५।३६) इसकी सुबोधिनी विवृतिमें आचार्यचरण शैवतन्त्रमें वर्णित चौंसठ कलाओंको सविवरण इस प्रकार गिनाते हैं.

१.गीतम् : ''गीतके अनेक भेद होते हैं, यथा गीत बनाना, रागोंके भेद, तान-मात्रा आदिको रचने तथा कहने के प्रकार, साधक-बाधक स्वरादिका ज्ञान''.

विनियोग : गीत कलाका विनियोग भगवत्सेवामें सन्मुखमें,ओटमें तथा कीर्तनसमाजमें भगवदीयोंके पद-कीर्तनोंको गानेमें होता है. कीर्तनोंके गानमें रागका क्रम सामान्यतया ऋतु तथा समय के अनुसार होता है, उत्सव इसमें अपवाद होते हैं. भगवदीयोंने जिस रागमें जिस पदकी रचना की हो उसी रागमें उसे गानेका आग्रह रखा जाता है. गेय पदोंमें पूर्वाचार्यों तथा प्राचीन पुष्टिमार्गीय भक्तों द्वारा विरचित पुष्टिभक्तिके भावोंसे प्रचुर पदोंका ही गान सन्मुखमें किया जाता है. सूरदासादि भक्तोंके भी मार्गाङ्गीकृत होनेसे पूर्व रचित पुष्टिभक्तिके भावोंके अननुरूप पदोंका गान नहीं किया जाता है. विशेषमें, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंके वंशज प्रायः सभी प्रमुख आचार्योंके गृहोंकी सेवाप्रणालिकामें किस दिन सेवाके किस अवसरमें कौनसे पद गाये जायेंगे उसकी भी प्रणाली लिखित होती है. अतः तदनुसार ही पदगान होता है. सेवाकर्ताको अपनी इच्छानुसार उसमें परिवर्तन करनेका अधिकार तो होता ही है. अधिक जानकारी केलिए इस विषयमें प्रचुर साहित्य सम्प्रदायमें उपलब्ध है.

२.वाद्यम् : इसी तरह चार(तन्तु, सुषिर, अवनद्ध और घन) प्रकारके वाद्योंको बजानेका ज्ञान, उनके आधारका ज्ञान, उनके भेद तथा करण का ज्ञान. और उनके साधक-बाधकका ज्ञान.

विनियोग : प्रातःकालमें प्रभुको जगानेसे पूर्व वीणा वादन होता है. सामान्य दिनोंमें सारंगी, तानपुरा अथवा हारमोनियम और मृदंग पदगानकी संगतमें बजाये जाते हैं. उत्सवोंमें ड्योढी पर नोबत-

शहनाई बजायी जाती हैं. प्रकट्योत्सवोंकी बधाई बैठने पर झांझ भी बजाये जाते हैं. होरीके दिनोंमें डफ, उपंग, किन्नरी, मोरचंग आदि वाद्य बजाये जाते हैं.

३.नृत्यम् :

विनियोग : नन्दोत्सव, तदनन्तर ढाढीलीला, तदनन्तर जोगीलीला तथा होरीके दिनोंमें स्वांग आदि अवसरों पर प्रभुके सन्मुख नृत्य होता है. अन्य अवसरोंमें भक्तसमाज मिलकर रास भी करते हैं.

४.नाट्यम् :

विनियोग : ढाढीलीलामें प्रभुके सन्मुख ढाढी-ढाढनका काव्यात्मक संवाद होता है. इसी तरह एकल अभिनयके रूपमें, बाललीलाके अवसर पर प्रभुके सन्मुख जोगीलीला होती है.

५.आलेख्यं : चित्रकारी

विनियोग : छठी, आरती, मण्डप, मन्दिर चित्रण, वस्त्र-पिछवाई आदिका चित्रण.

६. विशेषकाछेद्यम् : छीलना-नक्काशी

विनियोग : वस्त्र, चन्दनकाष्ट, हाथीदांत, स्वर्णादिके अभूषण, भोग सामग्रीका छेदन तथा उनपर चित्रण आदि.

७.तन्दुलकुसुमबलिविकाराः : चावल पुष्प आदि की आरती स्वस्तिक अष्टदल आकृतियां आदि बनाना.

विनियोग : भोगसामग्रीकी सजावट, आरती, मण्डप, सांझी आदि.

८.पुष्पास्तरणं : फूल बिछाना.

विनियोग : सांझी, हिंडोरा, बगीचा, फूलबंगला, पुष्पवितान आदि.

कुम्हलाजानेके पश्चात् सुखद न रह जाने, सूक्ष्म जन्तुओंका वारण सम्भव न होने आदि कारणोंसे शय्याके ऊपर पुष्पोंको नहीं सजाया जाता है.

९.दशनवसनानां गणाः : दांत वस्त्र आदिको रंगना, अधर-ओष्ठके लक्षणोंका ज्ञान. मनोभावोंके ज्ञानार्थ.

विनियोग : प्रभुके शृंगारमें. सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

१०.मणिभूमिकाकर्म : विविध मणियोंसे भूमि आदिको सुशोभित करना.

विनियोग : मन्दिर, सिंहासन, पलना, हिंडोरा, बंगला, आरसी, खिलौने आदिमें.

११.शयनरचनम् : शयन स्थान, पलंग आदिकी रचना करना.

विनियोग : प्रभुके शयनखंडमें रजत सुवर्ण हाथीदांत चन्दन आदिकी शैया, हिण्डोलाखाट, चौपड, दीवारों पर दर्पण, प्रकाशकेलिए काचकी हांडी, इत्रदानी, विविध प्रकारके (हाथ)पंखा, खिडकियों पर खसके भीगे परदा उष्णकालमें, रुईके परदा शीतकालमें आदि.

१२.उदकवाद्यम् : जलका वाद्य.

विनियोग : जलतरंग वाद्य.

१३.उदकाघातः : जलमें उस तरहसे आघात करना जिससे जल(तरलपदार्थ) ऊपर-नीचे यहां-वहां जाये.

विनियोग : भगवद्भोग्य तरलपदार्थोंको सिद्ध करनेमें. सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

१४.चित्रा योगाः : विचित्र प्रकारकी बनावटोंको समझना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

१५.माल्यग्रथनविकल्पाः : पुष्पोंको मालाकार आदिमें गुंथनेके विविध प्रकार.

विनियोग : पुष्पमाला, पुष्पकन्दुक, गुलछडी, हिंडोराका झूमर, फूलमंडली आदि.

१६.शेखरापीडयोजनं : मस्तकपर पाग, साफा, फेंटा आदि बांधने, केशोंको बांधने, केशोंमें पुष्पोंसे बने मुकुट आदि पहनाने.

विनियोग : श्रीमस्तकके शृंगारमें.

१७.नेपथ्ययोगाः : नाट्यशालाका निर्माण करना.

इस कलाका विनियोग भगवत्सेवामें अत्यधिक हता है. नित्य, उत्सव, ऋतु और मनोरथ की सेवामें भगवत्सुखको लक्ष्यमें लेकर तदनुरूप सुशोभन किया जाता है. इसके विवरणमें एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है.

१८.कर्णपत्रभङ्गाः : कर्णपत्र कर्णाभरण बनाना.

विनियोग : शृंगारमें.

१९.गन्धयुक्तिः : चन्दन-पुष्प आदि द्वारा विविध प्रकारकी गन्धोंका निर्माण करना. चन्दन तथा पुष्प से विविध प्रकारके वस्त्र बनाना.

विनियोग : इत्र, गुलबजल, चन्दनवाघा, फूलके आडबंद आदि, बंगला, खिलौने, शृंगार आदि.

२०.भूषणयोजनम् : आभूषणोंको बनाने पहननेकी विधा.

विनियोग : मोती, सोने, चांदी, मीनाकारी, जडाऊ, चन्दन, सीप, बघनखा, कस्तूरी आदिके शृंगार ऋतु-उत्सवानुसार धराये जाते हैं.

२१.ऐन्द्रजालाः : जादुके विविध खेल जिनके रहस्योंको दर्शक युक्ति या कल्पना से समझ न पाये.

विनियोग : भावसंगोपन. भक्ति भगवान् और भक्त के बीचका अति अन्तरंग भावात्मक रसात्मक सम्बन्ध होता है. इन दोके बीचमें किसी तीसरेको अवकाश नहीं होता है, न ही होना चाहिये. अतः ''अनाविष्कुर्वन् अन्वयात्'' ब्रह्मसूत्र(३।४।४९)के भाष्यमें भाष्यकार लिखते हैं :

> ''भावद्भाव रसात्मक होता है. रस ऐसा स्वभाव होता है कि यदि वह गुप्त रहता है तभी उसकी अभिवृद्धि होती है. अतः लोगोंके सामने वर्णा-श्रमधर्मोंकी आडमें अपने भीतर रहे हुवे भगवद्भावोंको छुपाकर भगवत्सेवा करनी चाहिये. इसी हेतुसे भक्तोंको वर्णाश्रमधर्मोंका पालन करनेकेलिए कहा गया है. ...सच तो यह है कि जबतक हृदयमें साक्षात् प्रभुका प्राकट्य नहीं हुआ है तबतक ही भगवद्भावोंका प्रदर्शन बाहर होता है, भगवत्प्राकट्य हो जाने पर ऐसा सम्भव नहीं है''[२७].

भाव ही भक्तका धन होता है. उसे खोना न हो तो भक्तको अपने भावको धनकी ही तरह छुपाकर रखना चाहिये. भक्तिमार्गमें तो सेव्य भगवत्स्वरूप, उनकी सेवा, उनकी कथा सब कुछ भावात्मक ही होते हैं. अतः इन सबका संगोपन जैसे भी हो सके वैसे करना अत्यावश्यक है.

भगवदीयोंके चरित्रमें भावसंगोपनका दृष्टान्त : महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंके शिष्य बाबावेनु तथा कृष्णदास वैष्णव होनेसे पूर्व चतुर्भुज स्वरूप श्रीकल्याणरायजीकी पूजा कल्याणी देवीके रूपमें

करके आजीविका चलाते थे. उस गांवमें क्योंकि सब शाक्त थे. प्रभुने जब आचार्यचरणोंको आज्ञा दी तो आपने दोनोंको समझाया और श्रीकल्याणरायजीको घरमें पधराकर मन्दिरमें किसी देवीकी प्रतिमा स्थापित कर देनेकी आज्ञा दी. इस तरह दोनों वैष्णव हुवे और बाहरका कोई जान न पाये उस तरहसे अपने घरमें कृष्णसेवामें तत्पर हो गये. (८४ वैष्णववार्ता. वार्ता क्र.३९)

२२. **कौचुमारयोगाः :** बहुरूपिया बननेकी; विविध वेश धारण करनेकी कला.

विनियोग : होरीके दिनोंमें प्रभुके सन्मुख देवादिके विविध वेशोंको धारण किया जाता है. नन्दमहोत्सवमें नन्द यशोदा गोपी ग्वाल का वेश धारण किया जाता है.

२३. **हस्तलाघवम् :** हाथोंकी चालाकी.

विनियोग : अन्तरंगसेवा करते समय वाग्व्यवहार वर्जित होता है. ऐसे अवसरोंपर हस्तादिके संकेतसे ही सन्देशका आदान-प्रदान होता है. भगवत्सेवा सम्बन्धी पदार्थोंको लाने-लेजानेके समय बहिर्मुखोंकी उपस्थिति होने पर उनका संगोपन करनेमें.

२४-२५.**शित्रं शाकयूश्च** : स्थूल और संकुचित करना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी. अस्पृश्यके स्पर्शसे बचनेमें, भूमि पर किये चित्रणोंकी रक्षामें आदि.

२६.**भक्षविकारक्रियाः :** विविध प्रकारके व्यंजनोंको बनानेकी कला.

विनियोग : भोज्य सामग्री सिद्ध करनेमें. इसका अत्यधिक विस्तार हुवा है. फलाहार(सूखे-ताजे), पयःपक्व(दूधगर), घृतपक्व (पक्की रसोई, हव्य, निखरी, अनसखडी) कव्यान्न(कच्चीरसोई/सखरी/सखडी) जैसे अनेकानेक भोज्य पदार्थोंका विनियोग ऋतु-उत्सव-मनोरथोंके अनुसार भगवत्सुखार्थ किया जाता है. समर्पित किये जाते फल-साग आदिमें वर्ज्य-ग्राह्यपदार्थोंका विवेक धर्मशास्त्र, वैष्णवतन्त्र और साम्प्रदायिक शिष्टाचार से होता है.

२७.**पानकरसरागासवयोजनम् :** पेय रसों तथा रागों को बनाना.

विनियोग : विविध आस्वाद्य रसोंकी भोग-सामग्री सिद्ध करनेमें.

२८.**सूचीवानकर्मः :** सिलाई कढाई, उसके विविध प्रकार.

विनियोग : लोकमें प्रचलित-अप्रचलित प्राचीन-अर्वाचीन-आधुनिक सभी तरहकी प्रभुको सुखद हो ऐसी सिलाई-कढाई(चिकनकारी जरदोशी कशीदाकारी कच्छी फुलकारी आरीभरत आदि) का विनियोग श्रीमस्तक पर धराये जाते टोपी टोपा कुलही फेंटा दुमाला पगा आदि, श्रीअंगपर धराये जाते वस्त्र, सिंहासनादि पर बिछाये जाते वस्त्र, दीवार गिरि, पिछवाई चन्दौवा आदिमें होता है.

२९.**सूत्रक्रीडा :** डोरीकी सहायतासे विविध प्रकारकी क्रिडा करना, जैसे लट्टु घुमाना, डोरीके ऊपर चलना-चढना, गांठे लगाना आदि.

विनियोग : लट्टु योयो भंवरा आदि खिलौनोंमें. टेरा-परदे खोलने बंद करनेमें. विविध प्रकारकी गांठे(नॉट्स्) लगानेमें. सर्वसाधारणोपयोगी.

३०.**वीणा-डमरुकवाद्यानि :** तन्तुवाद्य वीणा आदि तथा घनवाद्य डमरु आदि बजाना.

विनियोग : कला क्रमांक २ की तरह.

३१.**प्रहेलिका :** पहेली-कूटवाक्य का प्रयोग तथा उनको सुलझाना.

विनियोग : भगवद्भावोंके संगोपनार्थ बहिर्मुखोंके सामने बोले जाते कूटवाक्योंको बोलने-समझनेमें.

३२.प्रतिमाला : सर्ववस्तूनाम् अनुकरणम्.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

३३.दुर्वाचकयोगाः : सांकेतिक अक्षरों-प्रतीकोंका प्रयोग.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

३४.पुस्तकवाचनम् : लिखे-बोलेजाते वाक्योंमें अनुच्चरित-मिटाये हुवे वर्णोंको भी अतिशीघ्रतासे योजित करके पढ-समझलेना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

३४.नाटकाख्यायिकादर्शनम् : छाया नाटक, कठपुतली आदि द्वारा आख्यायिका दिखाना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

३५.काव्यसमस्यापूरणम् : काव्यमें अविद्यमान पद-समस्याकी पूर्ति करना.

विनियोग : भक्तों-विद्वानों-आचार्यों द्वारा विरचित भक्तिभाववाले कूटपद आदिको पढने-समझनेमें. यथा, सूरदासजीने गाया ''तब ता दिनतें वे लोग सुख-सम्पति न तजे'' इस कडीकी पूर्ति करते हुवे महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंने गाया ''सुनि 'सूर' सबनकी यह गति जे हरिचरण भजे''. इसी तरह चौपड खेलनेमें लीन कुछ लोगोंको देखकर सूरदासने गाया : ''मन! समझ सोच बिचार, ...छांडि सत्रह सुन अठारे, पंच ही कों मार, दूरितें तजि तीन काने चमक चोंक बिचार''.

३६. पत्रिकाचित्रवाचनविकल्पाः : फटे-बिखरे पन्नोंको जमाकर उनको पढना.

विनियोग : प्राचीन ग्रन्थोंको पढने आदिमें. सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

३७.तर्ककर्माणि : तर्कसे सर्व पदार्थका ज्ञान और तदनुसार कृति.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

३८.तक्षणम् : बढई आदि शिल्पकला.

विनियोग : काष्ठ आदिसे निर्मित सेवोपयोगी साधनोंके निर्माणमें.

३९.वास्तुविद्या : गृह आदिका निर्माण करनेकी कला.

विनियोग : भगवन्मन्दिर आदिके निर्माणमें.

४०.रूपरत्नपरीक्षा : रूप और रत्नों की परीक्षा.

विनियोग : प्रभु अंगीकार कराये जाते शृंगारोंमें.

४१.धातुवादः : भूमिगत धातुओंको पहचानना, निकालना, शुद्ध करना, मिश्रित करना आदिकी कला.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

४२.मणिरागज्ञानम् : मणियोंमेंसे रंग बनाना, मणियोंके ऊपर रंग लगाना आदि.

विनियोग : भगवत्सेवोपयोगि पदार्थोंके अलंकरणमें

४३.आकरज्ञानम् : धान आदिके ढेरको तोले बिना, देखकर ही उसके प्रमाणका ज्ञान.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

४४.वृक्षायुर्वेदयोगाः : वृक्षोंके रोग, उनके निवारण अदिका ज्ञान, सूखे वृक्षोंको हरे-भरे करना, फलमेंसे बीजको निकालना, एक वृक्षमें दूसरे वृक्षके फलोंको उगाना(क्रोस् ग्राफ्टिंग्).

विनियोग : निवेद्य फलोंकी टोकरी सजानेमें, फल-फूलके बगीचा-हिंडोरा सजानेमें.

४५.मेष-कुक्कुट-लावक-युद्धविधिः : भेड, मुर्गे, लावक आदि पक्षियोंको लडानेकी विधा.

विनियोग : दीपावली पर्व पर गो क्रीडामें.

४६.शुकसारिकाप्रलापनम् : तोता-मैना आदि पक्षियोंको बोलना सिखाना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

४७.उत्सादनम् : अवांछित व्यक्तिके मनमें उद्वेग उत्पन्न करके उसे वहांसे जानेकेलिए विवश करना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

४८.केशमार्जनकौशलम् : केशोंको धोने-संवारनेका कौशल.

विनियोग : शृंगारमें.

४९.अक्षरमुष्टिकाकथनम् : अन्य द्वारा पढे गये अक्षरोंको बता देना, मुट्ठीमें छिपी वस्तुको बता देना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५०.म्लेच्छितकलिकल्पाः : शत्रुको झघडवानेकी कला.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५१.देशभाषाज्ञानम् : परप्रान्तीय भाषाओंका ज्ञान.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५२.पुष्पशकटिका : पुष्पोंसे रथ-विमान आदिको सजानेकी कला.

विनियोग : पुष्पोंकी मंडली, हिंडोरा, रथ आदिमें.

५३.निमित्तज्ञानम् : कौवे आदि पक्षियोंकी ध्वनि-हिलचार द्वारा सम्भावित घटनाओंका ज्ञान.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५४.यन्त्रमातृकाः : प्रतिमाको चलाना, उनसे ध्वनि निकलवाना, हस्तमुद्रासे बात-चीत करना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५५.धारणामातृकाः : वर्ण-पद-वाक्य आदिको सुने हुवे क्रममें याद करलेना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५६.सम्पाद्यम् : अभेद्य हीरे आदिको तोडनेकी कला.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५७.मानसीकाव्यक्रियाः : दूसरेके मनकी बात बता देना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५८.अभिधानकोशः : अन्य द्वारा कहे गये प्रसंगादिको उसी क्रममें कहना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

५९.छन्दोज्ञानम् : व्यक्तिको देखने मात्रसे उसके स्वभाव-इच्छा आदिका ज्ञान हो जाना.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

६०.क्रियाविकल्पाः : एक ही कार्यको अनेक तरहसे करनेकी कुशलता.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

६१. कामादिसान्त्वनम् : उत्पन्न हुई कामना आदिको शान्त करना तथा शान्त हुई कामना आदिको जगाना.

विनियोग : भगवदसमर्पित पदार्थोंके सेवनमें, भगवत्सेवामें अनुपयोगी इन्द्रियोंके निग्रहमें. भगवदुच्छिष्ट पदार्थोंके उपभोगमें प्रवृत्ति करानेमें.

६३.शत्रु–मित्रकरणम् : शत्रुको मित्र बनानेकी कला.

विनियोग : दुःसंगके त्यागमें तथा सत्संगमें.

६४.सर्ववस्तूनाम् अन्यथाकरणम् : सभी वस्तुओंके स्वरूपको बदलनेकी कला.

विनियोग : सर्वसाधारणोपयोगी. परम्पराया उपयोगी.

स्मर्तव्य है कि इस आलेखका विषय ''पुष्टिभक्तिसम्प्रदायके परिप्रेक्ष्यमें कृष्णसेवामें विविध कलाओंका समर्पण'' प्रतिपाद्य होनेसे तत्–तत् कलाओंके भेदोपभेद, उनके समर्पणकी विधि–समय–भावना, कलाकृतिओंके चित्र आदि का निरूपण भी, यद्यपि, आलेखमें किया जा सकता था. तथापि विस्तारभय, अन्य आलेखोंमें इस पक्षका निरूपण किया गया होनेसे, तथा इस विषय पर सचित्र–सविवरण अनेक ग्रन्थ सम्प्रदायमें उपलब्ध हैं ही, अतः उसका विस्तार इस आलेखमें न करके कलाओंके प्रकार और उनका विनियोग साक्षात्–परम्परया श्रीकृष्णकी कौनसी सेवामें किया जाता है केवल उतना ही प्रतिपादन उपलक्षणविधिसे यहां किया गया है. (इस विषयमें कुछ अधिक सचित्र जानकारी Mobile Application : pushti-vidya की Photo Gallery में तथा www.pushtimarg.net इस वेबसाईटसे प्राप्त की जा सकती है.) आलेखमें भार प्रमुखतया कृष्णसेवा और समर्पण के सैद्धान्तिक पक्ष पर दिया गया है जिस पर चर्चा–विचारणा करना, न जाने क्यों, लोग कम पसन्द करते हैं.

उपसंहार :

श्रीकृष्ण तो स्वयं परब्रह्म परमात्मा भगवान् हैं. कौस्तुभ जिनका भूषण है, लक्ष्मी जिनकी भार्या हैं, गरुड जिनका वाहन है और जो स्वयं वागीश हैं उनको जीव क्या अर्पण कर सकता है. वस्तुतः नमनसे अधिक कुछ भी करने जीव समर्थ नहीं है. तथापि दास होनेसे जीवका यह कर्तव्य है कि ''**कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्, करोति यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेतत्**'' (भाग.पुरा.११।२।३६) ''वह उसकी काया वाणी मन इन्द्रिय बुद्धि आत्मा–अन्तःकरण और स्वभाव से जो–जो करे उसे ''यह सब परम पुरुष नारायण केलिये है'' ऐसे भावसे उन्हीको समर्पित कर दे''.

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

गोस्वामी शरद् (मांडवी–हालोल, गुजरात)
मो.९९०९०३५२३१
भगवद्गीता जयन्ती, वि.सं.२०७८

टिप्पणी :

१.''सत्त्वेव सोम्य इदम् अग्र आसीद् एकमेवाद्वितीयम्. ...तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय इति. तत् तेजो असृजत... अपो असृजत... अन्नम् असृजत... तदैक्षत हन्त अहम् इमाः तिस्रो देवता अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य नाम–रूपे व्याकरवाणि इति'' (छान्दो.उप. ६।२।२–३)

२.''स वै नैव रेमे. ...स द्वितीयम् ऐच्छत्. स हि एतावान् आस यथा स्त्री-पुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममेव आत्मानं द्वेधापातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्'' (बृहदा.उप.१।३।३)

३.''वेदान्ते च स्मृतौ ब्रह्मलिङ्गं भागवते तथा, ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते'' (तत्त्वदीपनिबन्ध १।६)

४. ''यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मति वेदान्तिनो, बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः,
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः, सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः''
(हनुमन्नाटक १।३).

५. ''यो-यो यां-यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुम् इच्छति, तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्,
स तया श्रद्धया युक्तः तस्याराधनम् ईहते, लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्,
अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्पमेधसां, देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि''
(भग.गीता ७।२१-२३)

६.''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म''(तैत्ति.उप.३।१)
''अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्, पश्चाद् अहं यदेतच्च यो अवशिष्यते सो अस्मि अहम्''(भाग.पुरा.२।९।३२).

७. ''गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्, प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजम् अव्ययम्'' (भग.गीता ९।१८)

८. ''तपस्विभ्यो अधिको योगी... योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना,
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः'' (भग.गीता ६।४६-४७)

९. ''युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्, चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम्'' (भाग.पुरा.१०।३।४५)

१०.''अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज, साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैः भक्तजनप्रियः,
नाहम् आत्मानम् आशासे मद्भक्तैः साधुभिविना, श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा,
ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तम् इमं परं, हित्वा मां शरणं याताः कथं तान् त्यक्तुम् उत्सहे!,
मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः, वशीकुर्वान्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा,
मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्, नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्,
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहं, मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि'' (भाग.पुरा.९।४।६७)

११.''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन'' (चतुःश्लोकी १)

१२.''स वा अयम् आत्मा सर्वेषां भूतानाम् अधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा तद् यथा रथनाभौ च रथनेमौ च आराः सर्वे समर्पिता एवमेव अस्मिन् आत्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एत अत्मानः समर्पिताः'' (बृहदा.उप.२।५।१५)

१३.''क्रीडार्थम् आत्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः, कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः''(भाग.पुरा.८।२२।२०)

१४.''यत् करोषी यद् अश्नासी यद् जुहोसि ददासि यत्, यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व'' मदर्पणम्''
(भग.गीता ९।२७)

१५.''निवेदिभिः समप्यैव सर्वं कुर्याद् इति स्थितिः'' (सिद्धान्तरहस्यम् ५) ''तस्माद् आदौ सर्वकार्ये सर्ववस्तु समर्पणम्'' (सिद्धान्तरहस्यम् ४)

१६.''शास्त्रे निवेदनं दानं ह्यर्पणं त्रिविधं स्मृतं, निवेदनं समुद्दिश्य द्रव्यस्य ज्ञापनं विधेः,
दानं स्वकीयता त्यागः परस्वापादनं विधेः, अर्पणं स्वामिभोग्यस्य स्वामिने ज्ञापनं मतम्''

१७.''पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति, तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः'' (भग.गीता ९।२६)

१८.''सेवा च प्रमाणमूलैव पुरुषार्थपर्यवसायिनी. अन्यथा मनसि अन्यद् विधाय अन्यथा करणे न फलसिद्धिः इति अभिप्रायेण आह 'श्रीभागवततत्त्वज्ञम्' इति.

१९.''यद्यद् इष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः, तत्तद् निवेदयेद् मह्यं तद् आनन्त्याय कल्पते'' (भाग.पुरा.११।११।४१)

२०.''अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत्, भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते''(भाग.पुरा.१०।८१।३)

२१.''अम्बरीष! नवं वस्त्रं फलम् अन्नं रसादिकम्, कृत्वा विष्णूपभोग्यं तु सदा सेव्यं हि वैष्णवैः''

२२.''विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्, पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते''.

२३.''अम्बरीष! गृहे पक्वं सदाभीष्टं यदात्मनो, अनिवेद्य हरेः भुञ्जन् सप्तजन्मनि नारकी'' (हरिवल्लभसुदोदयमें उद्धृत पद्मपुराणका वचन)

२४.''गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद् यद् अमायया, अमानित्वम् अदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम्'' (भाग.पुरा.११।११।४)

२५.''भगवत्सेवायामपि क्लिष्टं न समर्पयेत्. तत् क्लिष्टं त्रिविधं : लोकक्लिष्टम् आत्मक्लिष्टं चित्तक्लिष्टं च इति. अतो अक्लिष्टं निरूप्यते. लोके यद् यद् इष्टतमम् आम्र-द्राक्षादि आत्मनः अत्यन्तं प्रियं दुग्धादि सन्मार्गोपार्जितं न अन्येषां भागरूपं चिरकालमनोरथचिन्तितम्. अन्तःकरणप्रियं, तेनैव चित्तनिर्वृतिः. इतरनिषेधार्थम् एतद् उक्तम्''. (तत्त्वार्थदीपनिबन्धे सर्वनिर्णयप्रकरणम् २३६)

२६.''वृन्तांकं च कलिङ्गं च दग्धम् अन्नं मसूरिका, उदरे यस्य तिष्ठन्ति तस्य दूरतरो हरिः,
यो अर्चयेद् माधवं मूढो भक्षयित्वा तु मूलकम्, अपराधशतं तेन कृतं नात्र विचारणा''
(गो.श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृति में उद्धृत)

२७.''भगवद्भावस्य रसात्मकत्वेन गुप्तस्यैव अभिवृद्धिस्वभावकत्वाद् आश्रमधर्मैरेव लोके स्वं भगवद्भावम् अनाविष्कुर्वन् भजेत् इत्येतदाशयेन ते धर्मा उक्ताः. ...एतेन यावद् अन्तःकरणे साक्षात् प्रभोः प्राकट्यं नास्ति तावदेव बहिराविष्करणं भवति, प्राकट्ये तु न तथा सम्भवति इति ज्ञापितम्'' (अणुभाष्यम् ३।४।४९).

सन्दर्भ :

शास्त्रग्रन्थ : छान्दोग्योपनिषत्
बृहदारण्यकोपनिषत्
तैत्तिरीयोपनिषत्
भगवद्गीता
भागवतपुराण
पद्मपुराणका

साम्प्रदायिकग्रन्थ :तत्त्वार्थदीपनिबन्धका सर्वनिर्णयप्रकरण, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित
साधनदीपिका, श्रीगोपीनाथप्रभुचरण विरचित
चतुःश्लोकी, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित
सिद्धान्तरहस्यम्, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित
ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित
भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृति, गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित
श्रीवल्लभपुष्टिप्रकाश, लेखक : मुखीयाजी श्रीरघुनाथजी शिवजी, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई.

अन्य : हनुमन्नाटकम्, कवि हृदयराम विरचित